पद्माकर का साहित्यिक अवदान

* डॉ परशुराम पाल

महाकवि पद्माकर रीतिकाल के आधार– स्तम्भों में से एक हैं। इनका जन्म बाँदा में हुआ था और तैलंग ब्राम्हण थे। जीवकोपार्जन हेतु पद्माकर को कई राजदरबारों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। यह काव्यशास्त्र के अच्छे पण्डित तथा भावुक कवि थे। इनके पिता मोहनलाल भट्ट को महाराज प्रताप सिंह ने कवि शिरोमणि की उपाधि से विभूषित किया था। विद्वान पिता की सुशिक्षा का प्रभाव पद्माकर पर भी पड़ा। डॉ0 भागीरथ मिश्र ने 'कविता रसायन' में पद्माकर के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं – ''पद्माकर एक विद्वान, सरस हृदय, शौर्य प्रेमी तथा भक्ति भावना सम्पन्न कवि थे। राजाश्रय के लिए धन की अभिलाषा में निरन्तर जीवन भर रजवाड़ों में घूमते रहे। सम्पत्ति का अर्जन भी खूब किया, विलासमय जीवन भी व्यतीत किया किन्तु अन्त में सारी आकांक्षाएँ राम के चरणों में और गंगा के पतित पावन रेणु कणों को समर्पित हो गईं।''[1]

अन्य प्राचीन कवियों की भाँति पद्माकर का भी जीवन वृतान्त बहुत कुछ अस्पष्ट है। उनके जन्म के विषय में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। जन्म तिथि मृत्युकाल के सम्बन्ध में विद्वानों की एक राय है लेकिन जन्म स्थान के विषय में बड़ा मतभेद हे। बाँदा के साथ – साथ मथुरा, पन्ना और सागर का भी विद्वानों ने उल्लेख किया है। अखौरी गंगाराम सिंह ने अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उनका जन्म स्थान मथुरा माना है। उनके अनुमान का आधार 'राम रसायन' तथा 'जनगद्विनोद' ग्रन्थ हैं जिनमें 'इति सिद्धि श्री मथुरास्थ मोहनलाल भट्टात्म कवि पद्माकर विराचित' लिखा मिलता है।[2] आचार्य पद्माकर मथुरास्थ शाखा के तैलंग ब्राम्हण थे अतएव 'मथुरास्थ' के आधार पर उनका जन्म मथुरा मान लेना है लेकिन इसके समर्थन में प्रबल प्रमाण

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ एवम् सदस्य, उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, उ0प्र0

नहीं जुटा पाये हैं केवल इतना ही कहा है कि पद्माकर के पिता पन्ना नरेश हिन्दूपति के यहाँ रह रहे थे अतएव वहीं उनका जन्म स्थान रहा होगा। सागर को जन्म स्थान मानने वाले विद्वान सागर 'डिस्ट्रिक गजेटियर' को मानते हैं जिसमें पद्माकर का उल्लेख है। उन्होंने पद्माकर' और 'सागर' का एकार्थी होना बताया है। बुन्देली का एक छोटा सा साहित्य जो कि 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से पन्ना के छत्रसाल के पूर्वजों से प्रारम्भ होकर उनके वंशजों तक चलता है। इसमें 'पद्माकर' नाम का एक प्रमुख कवि हुआ है जिसका जन्म स्थान सागर है और जिसकी कविताएँ बुन्देली में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं।[3] इसी कथन का समर्थन करते हुए लाला भगवानदीन ने कहा– ''इनका जन्म संवत् 1810 वि0 में सागर में हुआ। इसी से इन्होंने अपना उपनाम 'पद्माकर' रखा था। सागर और पद्माकर शब्द एकार्थवाचक है, यह पद्माकर की विलक्षण 'जन्मभूमि भक्ति' का परिचायक है।''[4] हिन्दी शब्द सागर, शिव सिंह सरोज, श्रीधर भाषा कोष आदि से इनके बाँदा में जन्म लेने का विवरण मिलता है। जन्मतिथि तथा मृत्यु काल संवत् 1810–1890 वि0 अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

वंश परम्परा के अनुरूप ही कवि ने संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं का अध्ययन किया और अपने काव्य चमत्कार स्वरूप प्रथम कवित्त महाराज रघुनाथ राव अप्पा राहब को सुनाया जिस पर प्रसन्न होकर महाराज ने इन्हें एक लाख मुद्रा, एक घोड़ा और एक हाथी आदि पुरस्कार स्वरूप दिये। यह कवित्त 'लाखिया' नाम से प्रसिद्ध है –

सम्पत्ति सुमेर कुबेर की जो पावे
ताहि लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहैं पद्माकर सुहेममय हाथ्थिन के
हल के हजारन की तितर विचारै ना।।
गंज गजे बकस महीप रघुनाथ राव
या ही गज घोखे कहूँ काहै देई डारैना।
यातें गोरि गिरजा गजानन को गोइ रही
गिर तें गरे तें जि गोद ते उतारैना।[5]

अधिक समय तक पद्माकर की अप्पा साहब से निभ नहीं सकी और वे बाँदा वापस लौट आये। यहाँ आकर आप महाराज जैतपुर के राजगुरू हुए और बाद में महोबा निकटवर्ती सुगरा निवासी नोने अर्जुन सिंह के मंत्र गुरू हुए। अर्जुन सिंह के यहाँ रहकर लक्ष चंडी महायज्ञ कराके इनको तलवार सिद्धि कराई। कुछ समय बाद पद्माकर दतिया चले गये। दतिया से वह महाराज अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर) के दरबार में गये। वे रजधान के राजा थे। रजधान रियासत में कानपुर जनपद के तथा फतेहपुर जनपद के कुछ परगने शामिल थे। तत्पश्चात् कवि ने पुनः सागर का रास्ता पकड़ा लेकिन सागर उन्हें बहुत दिनों तक रास नहीं आया और पुनः उनकी बाँदा वापसी हुई। बाँदा आकर कवि को आर्थिक त्रासदी झेलनी पड़ी। अतएव उन्होंने जयपुर की ओर प्रयाण किया। बहुत अधिक प्रयास के फलस्वरूप पद्माकर की मुलाकात प्रताप सिंह से हुई। कवि से महाराज ने पूछा आप को यहाँ कौन लाया?तत्काल कवि ने उत्तर दिया –

बाल्मीकि को सप्त ऋषि तुलसी को हनुमान।
कवि पद्माकर को मिले संभू संभु समान।।[6]

इस पर महाराज ने इन्हें अपना राजकवि बना दिया। जयपुर में रहकर महाकवि महाराज की प्रशस्ति गान किया करते थे। जयपुर में सावन के महीने में एक रमणीय बाग में लोग झूला झूलते है और उत्सव मनाते हैं। उसी झूले को देखकर महाराज ने यह समस्या दी **'सावन को झूलिबो सुहावनो लगत है' और इसकी पूर्ति ने इस प्रकार की –**

भौंरन को गुंजन बिहार बन कुंजन में
मंजुल मल्हारिन को गावनो लगत है।
कहैं पद्माकर गुमन हू तै मान हू तै मन हू
तै हूँ तै प्यारों मन भावनो लगत है।।
मोरन को सोर घनघोर चहूँ ओरन
हिडोरन कौं वृन्द छवि छावनों लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में

सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है।।[7]

इसी प्रकार की एक और घटना काशी में हुई। सावन के महीने काशी में शंकु उद्धार का मेला हुआ करता है। वहाँ वाटरवर्क्स के तालाब के पास यह समारोह होता है जहाँ गाने वाली स्त्रियों का पीछा गुंडे किया करते थे। उस दिन भी महाराज की सवारी के सामने इस प्रकार की दृश्य था। गुंडे कह रहे थे रंग ही रंग है कवि ने उसका अर्थ प्रताप सिंह को इस कवित्त द्वारा समझाया –

सावन सखी री मन भावन के संग चलि,
क्यों न चढ़ि झूलन हिंडोरे नवरंग पर।
कहै पद्माकर त्यों जोवन उतंगनि तैं,
उमगि उमंगिम अनंग अंग अंग पर।।
चारू चूनरी की चारो तरफ तरंग तैसी,
तंग आगियाँ तनी उरज उतंग पर।
सौतनि के बदनि विलोकि बदरंग होत,
रंग है री रंग तेरी मेहदी सुरंग पर।।[8]

प्रताप सिंह के आनंदोपभोग के सहयोगी बनकर कविवर पद्माकर उनके मृत्यु पर्यन्त उन्हीं के साथ रहे। यही पर कवि ने प्रताप सिंह विरूदावली की रचना की। कवि को कुष्ठ रोग के लक्षण जयपुर में ही दीखने लगे थे, पर जैसे–जैसे उसकी भक्ति – भावना जाग्रत होती गई, वह कम होता गया। 1883–1890 वि0 के मध्य ही कवि ने 'रामरसायन', 'आलीजाह प्रकाश', 'हितोपदेश भाषानुवाद', 'प्रबोध पचासा' तथा अन्तिम रचना 'गंगा लहरी' पूरी की और कहा जाता है कि 'गंगा लहरी' की समाप्ति के साथ ही कवि का कुष्ठ रोग भी समाप्त हो गया। रीतिकाल के अन्तिम आचार्य कविवर पद्माकर ने विविध प्रकार की रचनाओं का सृजन कर रीतिकाल की परम्परा को एक नया आयाम दिया, इसे स्वीकार करने में मुझे किंचित संकोच नहीं है। उन्होंने साहित्य का विपुल भण्डार भरा है जो इस प्रकार है –

'जगद्विनोद', 'पद्माभरण', 'प्रबोध पचासा', 'गंगा लहरी', 'हिम्मत विरूदावली', 'भाषा हितोपदेश', 'भूषण चेतावनी', 'हिलहारी लीला', 'ईश्वर पचीसी', 'कलि पचीसी' 'जमुना लहरी'। जगद्विनोद' की रचना जगत सिंह की प्रशंसा में की गई है। इसमें नवों रसों का विवेचन है। नायक–नायिका भेद का इसमें विस्तृत वर्णन है। 'पद्माभरण' रीतिग्रन्थ है जिसमें रसों और अलंकारों का निरूपण किया गया है। 'प्रबोध पचासा' और 'गंगालहरी' में कवि की भक्ति–विषयक भावना का परिचय मिलता है। विरूदावली' में हिम्मत सिंह का प्रशस्ति– गान है। 'भाषा हितोपदेश' संस्कृत के हितोपदेश का गद्य–पद्यात्मक भावानुवाद है। इन्होंने 'राम रसायन' नामक चरित काव्य की रचना दोहा–चौपाइयों में की। यह रचना बाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखी गई। 'भूषण चेतावनी' प्रबल प्रमाण के अभाव में संदिग्ध प्रतीत होती हैं। 'लिलहरी लीला' के पक्ष के किसी प्रबल प्रमाण के अभाव के कारण उसे पद्माकर विरचित न मानना ही अधिक न्याय संगत प्रतीत होता है। 'कवि पच्चीसी' तथा 'ईश्वर पच्चीसी' दोनों संभव है एक ही रचना रही होंगी। 'जमुना लहरी' में यमुना की तरंगों का वर्णन किया गया है।

म्हाकवि की समग्र रचनाओं के विवेचनापरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वास्तव में पद्माकर प्रेम और सौन्दर्य के गायक हैं। जीवन के प्रारम्भिक काल में तो ओजस्वी वीर काव्य का प्रणयन कर अपना कवि कर्म शुभारम्भ किया और जीवन के सांध्यकाल में भक्ति–विषयक काव्य सृजन से समापन किया। यौवनवस्था में उनका मन श्रृंगार में ही रमा है और उसी से उन्हें सम्मान ओर वैभव की प्राप्ति हुई है। अनूभूति और अभिव्यक्ति के सुन्दर सामंजस्य के कारण पद्माकर का काव्य रसिकों के गले का हार बना हुआ है। इतना ही नहीं प्रेम या रतिभाव की अनेक विकासमान अवस्थाओं और विवृत्तियों तथा प्रेम प्रसंगों की मार्मिक व्यंजना एवं वर्णन ने कवि पद्माकर को रीतिकालीन आचार्यो की अग्रणी पंक्ति में बिठा दिया है। निम्नांकित पंक्तियों में पद्माकर ने भावनाओं का बड़ा सहज एंव स्वाभाविक दिक्दर्शन कराया है –

लजहिं बुलावत–सी सखिन रिझावत–सी
नावत सी प्रीति अति प्रीतम के मन में।
आँखिन असीसत–सी दीसत सी मंद–मंद
आवत चली यों तरूनाई तियातन में।।

प्रणयोन्मुख युवाचित्त रूप के श्रवण मात्र से अभिभूत हो जाता है –

रूप दुहू दुहून सुन्यो से रहैं तब तें मन संग सदा ही।
ध्यान में दोऊ हुदून लखै, हरषै अँग अंग अनंग उछाहीं।।[9]

इस मधुर पीर के रूप में प्रेम जब विकसित होकर मध्यावस्था को पहुँचता हे तब अपने आप को रति और लज्जा के संघर्ष जन्य एक विचित्र आवर्त में फँसा पाता है। प्रवत्स्यत्प्रेयसी के इस चित्र में कवि ने यह संघर्ष मूर्तिमान कर दिया है –

सेज परी सफरी सी पलोटति ज्यों–ज्यों घटा घन की गरजै री।
त्यों पद्माकर लाजन तें न कहै दुलरी हिय को हरजै री।।
आली कछू को कछू उपचार करै पै न पाई सकै मरजै री।
जाहि न ऐसे समै मथुरै यह कोऊन कान्हर को बरजै री।। [10]

अनूभूति और पाण्डित्य का मणि–कांचन संयोग और कला का संवारा रूप उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। उनकी काव्यधारा में तत्कालीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का समन्वय हुआ है। श्रृंगार प्रशस्ति–वैराग्य सम्बन्धी प्रतिपाद्यों की सुन्दर योजना कवि के बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचय देती है। राज – वैभव और प्रकृति वर्णन प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

हिन्दी के नायिका भेद का मूलाधार संस्कृत साहित्य का ही नायिका भेद है जिसका प्रारम्भ काव्य शास्त्र की परम्परा के साथ ही होता हैं। आदिकाल, भक्तिकाल साहित्य से अनवरत रूप से पुष्पित और पल्लवित होता नायिका – भेद वर्णन रीतिकाल में अधिकाधिक विकासित हुआ। नायक–नायिका भेद रीति–कवियों का प्रिय विषय बन गया। रीतिकाल में नायिका – भेद के विषय पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचनाएँ होने लगीं।

नायक–नायिका का जो स्वरूप रीतिकाल में दिखाया गया है वह तत्कालीन कवियों के आश्रयदाताओं एवं उनकी आश्रित भावना का प्रतिबिम्ब लक्षित होता है। पद्माकर की नायिका का उदाहरण कितना श्रृंगारिक, वासनापूर्ण एवं मनोहर है जो देखते ही बनता है –

आई खेलि होरी घर नवल किशोरी कहूँ
बोरी गई रंग में सुगंधन झकोरै है।
कहै पद्माकर इकंत चलि चौकी चढ़ी
हारन के बारन के फंद बंद छौरै है।
घाघरे की घूमन सु अरून दुबीचैं पारि
आंगी हूँ उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
दंतन अधर दाबि दूनर भई सी चापि
चौअर पचौअर कै चूनर निचोरै है।[11]

एक अन्य उदाहरण को देखिए –

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमेहे बैनी।
तत्यों पद्माकर हीर के हारन गंग तरंगन को सुख दैनी।।
पादन के रंग सो रंगिजात सी भाँति सरस्वती सेनी।
पैरे जहाँई ब्रज बाल तहाँ ताल में होते त्रिवेनी।। [12]

नायिकाओ के चित्रण में पद्माकर को महारत हासिल है। पद्माकर की नायिका के सौन्दर्य और उसकी कोमलता का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र निम्नांकित छंद में देखते ही बनता है, जहाँ नायिका के अंग–प्रत्यंग से परिमल की तरंगें तरंगायित हो रही हैं। उसके बालों के भार से उसकी लचक रही है। उसका शरीर इतना कोमल है कि पैरों में मखमल के बिछौने पर पड़ी कमल और गुलाब पंखुड़ियाँ भी चुभ रही हैं –

सुन्दर सुरंग नैन सौभित अनंग रंग
अंग अंग फैलत तरंग परिमल के ।
बारन कै भार सुकुमार को लचत लंक
राजै परजंक पर भीतर महल के।।

कहै पद्माकर बिलोकि उन रीझैं जाहि
अम्बर अमल के सकल जल थल के
कोमल कमल के गुलाबन के लि के
सु जात गड़ि पाइन बिछौना मखमल के।।[13]

नायिका के रूप का अतिशयोक्ति एवं श्रृंगारिक चित्रण रीति कवियों की विशेषता रही है। पद्माकर ने नायिका वर्णन में कमाल हासिल किया है। एक ओर वे नायिका के समष्टिगत सौंदर्य का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर उसके अंग–प्रत्यंगों द्वारा उत्पन्न प्रभावों की चित्रण करने में अपनी कला का परिचय देते हैं।

श्रृंगार रस के अन्तर्गत नायिका–भेद कथन के साथ ही नखशिख वर्णन भी किया जाता है। भारतीय साहित्य में नखशिख की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। नखशिख को श्रृंगार रस के उद्दीपन विभाग के अन्तर्गत मानने का कारण बताते हुए डॉ0 हरिशंकर शर्मा ने लिखा है – ''नायिका को देखकर हृदय में जो रतिभाव होता है, नायिका के सौन्दर्यपूर्ण अंग विशेषों का चिंतन और स्मरण उसको अधिकाधिक उद्दीप्त करने में सहायक होता है। जिस नायिका के अंग – प्रत्यंग जितने अधिक सुन्दर होंगे उसके प्रति रति भाव भी उतना ही अधिक उद्दीप्त होगा। जहाँ अंग सौष्ठव की कमी या उसका बिल्कुल अभाव होगा, वहाँ नायिका के होते हुए भी रतिभाव उद्दीप्त न होगा। यही कारण है जो नखशिखों की उद्दीपनों की गणना की गई है।''[14]

पद्माकर ने भी कुछ छंदों में नायिका के रूप सौन्दर्य एवं नखशिख का वर्णन किया है। उर को बींध देने वाले नेत्रों की चितवन का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं –

चाह भर्‌यो चंचल हमारो चित्त बधू,
तेरी चल चंचल चितौनि में बसत है।
कहै पद्माकर सु चंचल चितौनि हूँजे,
औझकि उझकि झझकनि में फँसत है।

बाँही की गहनि माहि आई बिलसत है।
बाँही की गहनि तैं गुनाही की कहनि आयो,
नाही की कहनि तैं सुनाही निकसत है।।[15]

कविवर पद्माकर ने अनेक छंदों मे नायिका के सौन्दर्यपूर्ण विभिन्न अंगों का अत्यन्त सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन किया है –

ईश की दुहाई शीशफूल तैं लटकि लट,
लट तैं लटकि लट कंघ पै ठहीर गो।
कहैं पद्माकर सुमंद चलि कंध हूँ तैं,
भूमि भ्रमि भाई सी भुजा में त्यों भभरि गो।।
भाई–सी भुजा तै भ्रमि आयो गोरी–गोरी बाँह,
गेरी बाँह हू तैं चापि चूरिन में अरिगो।
हेरउ हरे हरैं हर चूरिन तैं चाहौं जौलौ,
तौलौ मन मेरे दौरि तेरे हाथ परिगो।।[16]

विद्यापति की भाँति पद्माकर के भी छंद बरबस ही रसिकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं । कवि की पैनी दृष्टि नायिका के अंगों–प्रत्यंगों पर ही ठहर जाती है। एक छंद द्रष्टव्य है –

ये अलि या बलि को अधरानि मैं,
आनि चढ़ी कछु माधुराई सी।
ज्यों पद्माकर माधुरी त्यों,
कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।।
ज्यों कुच त्यों ही नितंब चढ़े कछु,
ज्यों ही नितंब ज्यों चातुरई सी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि मैं,
किहि धों कटि बीच ही लूटि लई–सी।।[17]

पद्माकर का नखशिख वर्णन अत्यन्त सफल और उनकी निरीक्षण शक्ति का परिचय देता है जिसमें उनके आचार्यत्व और कवित्व दोनों ही दृष्टिकोणों का सम्मिलन हो गया है। उनके छंदों में चमत्कार तथा ऐन्द्रियता

का समावेश होते हुए भी अत्यन्त सरसता तथा स्वाभाविकता विद्यमान है। नायिका के अंग–प्रत्यंगों का अति सरस भावपूर्ण द्रष्टव्य है –

ये अलि हमें तो बात गात की न जानि परै,
बूझति ने काहे यामें कौन कठिनाई है।
कहे पद्माकर क्यों अंग ना समात आँगी,
लागी काह तेंहि जागी उर में ऊँचाई है।
बावरी बिलोकै क्यां न आँखिन में आई है।
मेरी कटि मेरी भट कौन धौं चुराई,
तेरे कुचन चुराई कै नितंबन चुराई है।।[18]

गोपियाँ अपेक्षा करती हैं कि कृष्णा कि बाँसुरी की धुनि निरंतर कानों मूं गूँजती रहे तथा कृष्णा उनके हृदय में सदैव विराजमान रहें। उनकी दशा इस प्रकार की है–

कानन में बसी बाँसुरी की धुनि,
प्रानन में बसो बाँसुरी वारों।[19]

गोपियों ने अपने हृदय में कृष्ण को सदा के लिए बसा लिया है अर्थात् वे कृष्णमय हो गई हैं। उनकी मनोदशा कैसी है?पद्माकर ने बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है –

जाहि न चाह कहूँ रति की,
सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यों पद्माकर आनन मैं रूचि,
कानन भौंह कमान लगी है।।
देति पिया न छुवै छतियाँ,
बतियान मैं तो मुसकान लगी है।
पीतमै पान खवाइबे को,
परजंक के पास लौं जान लगी है।।[20]

पद्माकर ने पृथक–पृथक रूप से भी नायिका के विभिन्न अंगों का चित्रण करके अपनी काव्य कला की उत्कृष्टता प्रदर्शित की है। पद्माकर ने

नायिका के नखशिख चित्रण में प्राकृतिक, मानवीय तथा आलंकारिक सौंदर्य का अत्यन्त सुन्दर दिक्दर्शन कराया है।

अनादिकाल से मानव और प्रकृति का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। आदिकाल से ही कवियों ने प्रकृति चित्रण के विभिन्न रूपरूपों को अपनाया है। षड्ऋतु एवं बारहमासा के वर्णन की प्रवृत्ति आदिकालीन कवियों में पहले से ही विद्यमान थी लेकिन रीतिकाल में तो अपनाने की होड़ जैसी लग गई थी। अतः रीतिकालीन कवि पद्माकर ने भी इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा। पद्माकर ने अपने काव्य में प्रकृति को आलम्बन, उद्दीपन, पृष्ठभूमि तथा आलंकारिक आदि रूपों में चित्रित किया है। षड्ऋतुओं में कवि ने परम्परागत ग्रीष्म, पावस, शरद्, हेमन्त, शिशिर और बसंत इन छः ऋतुओं का अपने काव्य में वर्णन किया है। बसंत ऋतु का छंद द्रष्टव्य है–

फूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्त है।
कहै पद्माकर परागन में पौन हूँ मैं
पानन में पाक में पलाशन पगन्त है।।
हार में दिशान में दूनी में देश–देशन में,
देखो दीप–दीपन में दिपत दिगन्त है।
बीथिन में ब्रज मं नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है।।[21]

पद्माकर का ऋतु वर्णन वर्णनात्मक शैली में है। कवि ने बसंत ऋतु के साथ–साथ उससे जुड़ा हुआ होलिकोत्सव का भी बड़ा हृदयग्राही चित्र खींचा है। एक छंद द्रष्टव्य है–

फाग के भीर अभीरन मैं गहि,
गोविंदैं लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मनकी पद्माकर,
ऊपर नाय अबीर की झोली।।
छीनि पितंबर कंबर तै सु

बिदा दई मीड़ि कपोलन सेरी।
नैन नचाय कही मुसकाय,
लला फिरि आईयो खेलन होरी।। [22]

इस अवसर पर ब्रजबालाओं में किस प्रकार की मादकता है जिसका वर्णन कवि ने चित्रात्मक शैली में किया है –

अधखुली कंचुकी उरोज अध–आधे खुले,
अधखुले बेस नख–रेखन की झलकैं।
कहै पद्माकर नवीन अध–नीवी खुली,
अधखुले छहरि छहरि छराके छोर छलकैं।।
भोर जगि प्यारी अध–ऊरध इतै की ओर,
झाँकी झिखि झिरखि उघारि अध पलकैं।
आँखें अधखुली खिरकी है खुलीं,
अधखुले आनन पै अधखुली अलकैं।। [23]

पावस ऋतु में हिंडोले और तीज त्योहार का सजीव और प्रभावोत्पादक वातावरण बड़ा ही मनोरम होता है। तीज पर्व पर पद्माकर की नायिका का उल्लास देखते ही बनता है –

तीर पर तरनि तनूजा के तमाम –तरे
तीज की तयारी ताकि आई तखियान में।
कहैं पद्माकर सो उमंगि उमंग उठी
मेहदी सुरंग की तरंग नखियान में।।
प्रेम रंग बौरी गोरी नवल किशोरी तहाँ,
झूलति हिडोरे यों सुहाई सखियान में।
काम झूलै प्यारी की अन्यारी अंखियान में।।[24]

पद्माकर ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनाते हुए परम्परागत बारहमासा और षड्ऋतु वर्णन को अपने काव्य में सहज एवं अनूठे ढंग से प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया है।

पद्माकर ने जहाँ श्रृंगार के विविध पक्षों का अपने काव्य मं

उद्घाटन कराके प्रमाणित कर दिया कि वे रीतिकाल के अन्तिम आचार्य हैं और उनका आचार्यत्व परवर्ती कवि बराबर स्वीकारते रहेंगे। उन्होंने अपने काव्य में अन्य रसों की श्री त्रिवेणी बहाई है। भक्ति की व्यंजना पद्माकर ने आलम्बन विधान द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत की है –

देखु पद्माकर गोबिंद की अमित छबि,
संकर समेत विधि आनंद से बाढ़ो है।
झिझिकत झूमत मुदित मुसुकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सो आढ़ो है।।
पटकत पाँव होत पैजनी झुनुक रंच,
नेक–नेक नैनन तें नीर–कन काढ़ो है।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीबे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाढ़ो है।। [25]

पद्माकर के काव्य में रसों की सुन्दर योजना देखने को मिलती है। वीर रस की व्यंजना में कवि ने अनुभाव योजना का सहारा लिया है–

तहँ अति ललाई उमगि छाई दृगन माँझ दिखात है।
जन बीर रस तन पूरि करि अँखियान ह्वै उपनात है।।
तन तेज बहु अरू ताउ तीछन चाउ जिहि सोभानि सनो।
हिम्मत बहादुर को जु तन रन में सु देखत ही बनो ।। [26]

पद्माकर हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में जाने जाते हैं। इनकी काव्य प्रतिभा का आदर करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है – ''पद्माकर के समय हिन्दी काव्य में इतिहास ठहर गया। इस ठहराव के बाद हिन्दी कविता और साहित्य 'आधुनिक की ओर' मुड़ जाता है।''[27]

कविता के क्षेत्र में अलंकारों का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता रहा है। जिस स्थल विशेष पर काव्य के जिस उद्देश्य विशेष का प्रयोग करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ0 भगीरथ मिश्र के विचार द्रष्टव्य हैं – ''जिस व्यक्ति में कोई बाँकपन मिलता है वही उक्ति अलंकार है। सामान्यतया यह वैचित्र्य शब्द के विशेष प्रयोग या अर्थ की भंगिमा से संपादित होता है। अतः इसी

आधार पर अलंकार और अर्थ के दो भेद किये जाते है।'' [28] पद्माकर ने अलंकार – निरूपण पर 'पद्माभरण' नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा। इससे स्पष्ट होता है कि ये कविता में अलंकार योजना को महत्वपूर्ण मानते थे। कवि ने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार को बहुलता के साथ प्रयोग किया है। यत्र–तत्र उभयालंकार के भी दर्शन होते हैं। पद्माकर के काव्य मं अनुप्रास अलंकार की बहुलता देखने को मिलती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत है। [29]

पद्माकर का अप्रस्तुत विधान मर्मग्रहिणी दृष्टि और भाव प्रेरित सूझ का परिचायक है। परम्परागत प्रचलित उपमानों के उचित प्रयोग के अतिरिक्त इन्होंने अपने अवलोकन के आधार पर अनुभव में आये हुए विभिन्न क्षेत्रों से भी अप्रस्तुत चुनें। वनस्पति जगत के कुछ उपमान द्रष्टव्य हैं–

इहिं अनुमान प्रमानियुत तियतन जोबन जोति।
ज्यों मेहदी के पात में अलख ललाई होति।।[30]
स्जन विहूनी सेज पर परे पेखि मुकतान।
त्बहि तियो को तन भयो मनौं अधपक्यो पान।।[31]
पुलकित, गात अन्हात यों अरी खरी छबि देत।
ऊगे अंकुर प्रेम के मनहु हेम के खेत ।।[32]

परम्परा का निर्वाह तो रीतिकवियों ने किया ही है लेकिन पद्माकर ने अपने अनुभव के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों से कुछ ऐसे विशिष्ट अप्रस्तुतों को जुटाया है जो निश्चय ही परवर्ती कवियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

पद्माकर के काव्य में छन्दों की बहुलता है। उनके प्रमुख छंद छप्पय, हरिगीतिका, हाकल, डिल्ला, भुजंग प्रयात, त्रिभंगी, नाराज, चौपाई, सोरठा, कवित्त ओर सवैया हैं। छंद विधान में सबसे अधिक सफलता कवित्त में मिली है। पद्माकर के सब कवित्त पिंगल के अनुसार खरे उतरते हैं। घनाक्षरी छंद का लयाधार तीन अष्टक अक्षर पर्वो के बाद एक सप्तक

पर्व का प्रयोग है (8, 8, 8, 7)। लय और संगीतात्मकता का सर्वत्र ध्यान रखा गया है। निर्बाध और गतिमान प्रवाह की योजना के लिए वर्णो और शब्दों का चुनाव नियोजित ढंग से किया गया है। शब्द विन्यास की प्रतिभा पद्माकर में विद्यमान है। छंदों की गति–यति, लय और स्वरारोहावरोह को भावानुकूल प्रवाहित और संयमित करने के लिए आवश्यकतानुसार अलंकारों का प्रयोग किया गया है। निम्नांकित छंद में वातावरण, क्रिया और भाव का ध्यनन तथा सम्प्रेषण दिखाया गया है –

खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की,
रूनुक झुनुक सुर नूपुर के जाल को।

एक अन्य छंद को देखिए –

मेहि झकझोरि डारी कंचुकी मरोरि डारी।
तेरि डारी कसनि बिथोरि डारी बैनी त्यों।।

झकझोरि, भरोरि, तोरि और बिथोरि क्रियाओं के उच्चारण से उनके कार्यो का ध्वनन होता है।

कविवर पद्माकर छन्दों के चयन और उनके नियमों के परिपालन में अत्यधिक सजग दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने छंदानुशासन का अक्षरशः परिपालन किया है।

भाषा अभिव्यक्ति का साधन होती है। कवि के लिए अनुभूति और सशक्त अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है ताकि वह अपने काव्य को कालजयी बना सके। पद्माकर की काव्य भाषा, बिम्बों और उनकी रेखाओं के अनुरूप इतनी सधी हुई एवं सौष्ठव–सम्पन्न है कि प्रत्येक शब्द की योजना देखते ही बनती है। पद्माकर की भाषा व्याकरण सम्मत है और उनकी भाषा में आवश्यकतानुकूल ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों के दर्शन होते हैं। पद्माकर ने बड़ी उदारता और साहस के साथ लोक में प्रचलित शब्दों का आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। जहाँ रीति, गुण, वृत्ति और शब्द शक्ति का विनियोग इनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है, वहीं पर सहजरूप से व्यवहृत मुहावरों और लोकोक्तियों ने उनकी भाषा को बहुत

सहज और प्राणवान बना दिया । कुछ मुहावरे द्रष्टव्य हैं–

आसन इरघ देत देत निसिवासर
विचारे पाकसासन को साँस न मिलति है।[33]
जहाँ–जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जात गंगा
तहाँ–तहाँ पापन की धरि उड़ि जात है।[34]
अधम उधारन हमारे रामचंन्द्र तुम
साँचे विरदैत याते काँचे हम क्यों परैं।।[35]

जहाँ इनके काव्य में मुहावरों की भरमार है, वहीं आवश्यकतानुकूल लोकोक्तियों का भी प्रयोग कवि ने किया है। कुछ लोकोक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

भूलिहू चूक परै जो कहूँ तिहि
चूक की हूक न जाति हिय तें।[36]
जो विधि भाल में लीक लिखी
सो बढ़ाई बढ़ै न घटै न घटाई।[37]
एक जु कंज कली न खिली तौ
कहा कहूँ भौंर को ठोर है नाही।[38]

पद्माकर की भाषा के सम्बन्ध में काव्य – शास्त्र के विद्वान डॉ0 भगीरथ मिश्र के विचार द्रष्टव्य हैं– ''भाषा के ऊपर पद्माकर जी का असाधारण अधिकार था। सरल, मधुर और प्रचलित शब्दों का उपयोग करके उन्होंने भाषा का प्रांजल तथा सशक्त बना दिया है। उनका वाक्य विन्यास भी अत्यन्त स्वाभाविक तथा आकर्षक होता था। जिससे भाषा में प्रवाह तथा संगीतात्मकता आती है।''[39]

विवेचनोपरान्त हम कह सकते हैं कि रीतिकालीन कवियों में पद्माकर का उच्च स्थान निर्विवाद है। उनकी कविता में जहाँ श्रंगारिकता है, वहाँ आध्यात्मिकता के भी दर्शन सहजता से प्राप्त हो जाते हैं। लोक जीवन का उनको व्यापक अनुभव था जो उनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। पद्माकर की भाषा अत्यन्त मधुर, सुसंगठित, प्रवाहपूर्ण तथा प्रांजल ब्रजभाषा है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा सजीव हो उठी

है। माधुर्य गुण का उनके काव्य में प्राधान्य है; प्रसाद गुण की कमी नहीं है और ओजगुण भी समयानुकूल दृष्टिगत होता है। घनाक्षरी और सवैया उनके प्रिय छंद हैं। कवि ने छोटी –छोटी उपमाओं का प्रयोग कर प्रमाणित कर दिया है कि अनावश्यक अलंकारों का प्रयोग कर वे काव्य को बोझिल नहीं बनाना चाहते हैं। कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग बड़ी सफलता तथा अधिकता के साथ किया है और बड़े–बड़े रूपक बाँधने की इनकी प्रवृत्ति नहीं दृष्टिगत होती है। पद्माकर के काव्य का लोक में जितना प्रचार हुआ है, संभवतः किसी दूसरे कवि का नहीं।

संदर्भ :–

1. सं0 डॉ0 भागीरथ मिश्र : कविता रसायन (रीति काव्य संग्रह), पृ0 179 ।
2. अखौरी गंगा प्रसाद सिंह : पद्माकर की काव्य साधना, साहित्य सेवा सदन, काशी।
3. सागर डिस्ट्रिक गजेटियर।
4. हिम्मत बहादुर विरूदावली।
5. पद्माकरः जगद्विनोद।
6. भालचन्द्र राव तैलंग : महाकवि पद्माकर भट्ट, माधुरी वर्ष 13, खण्ड 2, सं0 सं0 1, सन् 1934।
7. भालचन्द्र राव तैलंग : वही, माधुरी, वर्ष 13 खण्ड 2, सं0 1, 1934।
8. भालचन्द्र राव तैलंग : वही, माधुरी, वर्ष 13 खण्ड 2, सं0 1, 1934 ।
9. पद्माकर : जगद्विनोद, छंद सं0 452 ।
10. पद्माकर : जगद्विनोद, छंद सं0 248 ।
11. पद्माकर ग्रन्थावली, जगद्विनोद, छंद सं0 14 ।
12. वही, छंद सं0 13 ।
13. पद्माकर ग्रन्थावली, जगद्विनोद, छंद सं0 12 ।
14. डॉ0 हरशिंकर शर्मा : रस – रत्नाकर, पृ0 616–617 ।
15. सं0 डॉ0 नगेन्द्र : रीति–श्रृंगार, पृ0 208 ।

16. सं0 डॉ0 नगेन्द्र : रीति–श्रृंगार, पृ0 207।
17. वहीं, पृ0 209।
18. सं0 डॉ नगेन्द्र : रीति – श्रृंगार, पृ0 21 ।
19. वही, पृ0 210।
20. वही ।
21. सं0 डॉ0 नगेन्द्र : रीति – श्रृंगार, पृ0 213 ।
22. वही, पृ0 216 ।
23. वही।
24. पद्माकर ग्रन्थावली : जगद्विनोद, छंद सं0 464।
25. पद्माकर ग्रन्थावली : प्रबोध – पचासा, छंद सं0 277 ।
26. पद्माकर ग्रन्थावली : हिम्मत बिसदावली, छंद सं0 118 ।
27. डॉ0 बच्चन सिंह : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ0 222 ।
28. डॉ0 भगीरथ मिश्र : काव्य–शास्त्र, पृ0 160 ।
29. पद्माकर ग्रन्थावली : जगद्विनोद, छंद सं0 378 ।
30. पद्माकर : जगद्विनोद, पृ0 26।
31. वही, पृ0 186 ।
32. वही, पृ0 406 ।
33. पद्माकर : गंगा लहरी, छंद सं0 18 ।
34. वही।
35. पद्माकर : प्रबोध – पचासा, छंद सं0 17 ।
36. पद्माकर : जगद्विनोद, छंद सं0 178 ।
37. वही, छं0सं0 496 ।
38. पद्माकर : जगद्विनोद, छंद सं0 369।
39. सं0 डॉ0 भगीरथ मिश्र : 'कविता रसायन' (रीतिकाव्य संग्रह), पृ0 180.